International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 04, No. 03(II), July - September, 2022, pp. 243-248

# स्वामी विवेकानन्द के दार्शनिक विचारों का वर्तमान शिक्षा के उन्नयन पर प्रभाव

डॉ. दीप्ति*

**सार**

*स्वामी विवेकानन्द आधुनिक दार्शनिकों में प्रमुख स्थान रखते थे। स्वामी जी ने वेदान्त के शाश्वत मूल्यों एवं दर्शन के गम्भीर तत्वों को व्यावहारिक रूप देने एवं उन्हें समाज तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया। उनका अभिमत था कि वेद के सिद्धान्त अपने आप में सत्य होने पर भी उन्हें कार्यरूप में परिणत करने में मनुष्य को कठिनाई का अनुभव होता है। वेदान्त सिद्धान्त यदि मानव–समाज में धर्म का स्थान लेना चाहता है, तो उसे अनिवार्यतः व्याहारिक होना ही पड़ेगा। उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्य रूप में परिणित करनेयोग्य बनाना होगा जिससे आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक क्षेत्र की खाई को भरा जा सके। विवेकानन्द ने यही प्रयास किया और वेदान्त के सिद्धान्तों की समयानुकूल व्यावहारिक व्याख्या कर, उसे जन–जन का जीवन–दर्शन बनाने के लिये जीवन पर्यन्त सचेष्ट रहे। विवेकानन्द इस ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि साधारणतः हम अकर्म का अर्थ निष्क्रियता लगा लेते हैं, जबकि मनुष्य जीवन का यह आदर्श कभी भी हो ही नहीं सकता, ''यदि होता तो हमारे चारों ओर की दीवाले भी परमज्ञानी होती, वे भी तो निश्चेष्ट हैं।''1 वेदान्त का आदर्श जो प्रकृत कर्म है, वह अनन्त शान्ति के साथ संयुक्त है। किसी भी प्रकार की परिस्थिति में वह स्थिरता कभी नष्ट नहीं होती, चित्त का साम्यभाव नष्ट नहीं होता, इस प्रकार की मनोवृत्ति ही कार्य के लिए आवश्यक है। साधारणतः समाज में रहकर, मनुष्य को अपनी इच्छाओं, भावनाओं व उद्देश्यों के माध्यम से कर्म करने की आदत पड़ जाती है। मनुष्य यह सोच भी नहीं सकता कि इनके बिना कार्य कैसे सम्भव है? जब इस संशय से प्रेरित होकर लोगों ने विवेकानन्द जी से प्रश्न किया तो नका कहना था कि कार्य के पीछे हमारा आवेग जितना कम होगा, वह कार्य उतना हीशानदार होगा, जितने हम अधिक शान्त प्रतीत होते हैं, उतना ही हमारा आत्म कल्याण होता है, और हम कार्य भी अच्छी प्रकार से कर पाते हैं, और जब हम भावनाओं, इच्छाओं में बहते हुए कार्य करते हैं, तब अपनी शक्ति का दुरुपयोग तो करते ही हैं अपने मस्तिष्क को विकृत कर डालते हैं एवं मन को चंचल बना देते हैं, जिससे काम बहुत कम कर पाते हैं। जिस शक्ति को कार्य रूप में परिणित होना था, वह व्यर्थ ही भावुकता में क्षय हो जाती है। जब मन शान्त एवं अति एकाग्र होता है, केवल तभी हमारी समस्त शक्ति सत्कार्य में व्यय होती है। यदि हम जगत् के महान व्यक्तियों के जीवन चरित्र के विषय में पढ़ें, जिन्होंने समाज एवं अपने राष्ट्र के उत्थान एवं कल्याण के लिये कार्य किया, हम देखते हैं कि वे सभी शांत प्रवृत्ति के लोग थे, जगत् की वस्तुएँ उनके चित् की स्थिरता को भंग नहीं कर पाती थी। अतः जो व्यक्ति जल्दी क्रोध, घृणा या अन्य किसी आवेश से वशीभूत हो जाता है, वह कोई बड़ा काम नहीं कर पाता। केवल शान्त व स्थिर–चित्त व्यक्ति ही सबसे अधिक कार्य कर पाते हैं।*

***शब्दकोशः*** *स्वामी विवेकानन्द, सामाजिक दर्शन, मानवतावाद।*

---

**प्रस्तावना**

वेदान्त आदर्श का उपदेश देता है, आदर्श वास्तविक या तथ्य की अपेक्षा सदैव अधिक उच्च होते है, एवं वेदान्त पूर्ण रूप से व्यवहारिक है। वस्तुतः वह आदर्शात्मक व्यवहार्य का उपदेश देता है। इसीलिए विवेकानन्द कहते हैं कि ''वेदान्त का आदर्श कितना ही उच्च क्यों न हो, वह किसी असम्भव आदर्श को हमारे सामने नहीं रखता, और वास्तव में यही आदर्श ठीक आदर्श है।

* सहायक आचार्य, शिक्षक–शिक्षा विभाग, टीका राम कॉलेज ऑफ एजुकेशन, सोनीपत, हरियाणा।

साधारणतः समाज में रहकर मनुष्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति की इच्छा से प्रेरित होकर भावनाओं एवं स्वार्थ आदि तत्वों द्वारा मदद मिलती है उसका पूर्ण प्रभुत्व न समझकर उसे स्वीकार कर लेते हैं, जिसका कारण है, स्वयं पर विश्वास न होना। वेदान्त सर्वप्रथम मनुष्य को अपने ऊपर विश्वास करने के लिए कहता है। संसार के कुछ धर्मों में कहा गया है कि जो व्यक्ति अपने से बाहर धर्म के सगुण ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार नहीं करता, वह नास्तिक है, उसी प्रकार वेदान्त कहता है कि जो व्यक्ति अपने आप पर विश्वास नहीं करता, वह नास्तिक है। काफी लोगों के लिये यह एक कठिन, असंभव विचार हो सकता है और कुछ यह भी सोचते हैं कि इसे व्यक्ति इस सत्य को जीवन में प्रत्यक्ष का अनुभव हो सकता है। इसकी उपलब्धि में स्त्री–पुरूष, बालक–बालिका, जाति या लिंग आदि का भेद बाधक नहीं है, क्योंकि वेदान्त दिखा देता है कि वह सत्य पहले से ही सिद्ध है और पहले से ही विद्यमान है। मनुष्य में ब्रह्माण्ड की समूची शक्ति स्वरूपतः विद्यमान है। हम लोग स्वयं ही अपने नेत्रों पर हाथ रखकर ''अंधकार अंधकार'' कहकर चीत्कार करते हैं। हाथ हटाने पर ज्ञात होता है कि वहाँ प्रकाश पहले से ही वर्तमान था। अंधकार, दुर्बलता, कभी थी ही नहीं। हम मूर्ख होने के कारण ही चिल्लाते हैं कि हम दुर्बल, अपवित्र है। इस प्रकार वेदान्त के आदर्श को व्यावहारिक तौर पर क्रियान्वित किया जा सकता है।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है वेदान्त कहता है, अभ्यास, आरोप मात्र है। कुछ उसके ऊपर आरोपित कर दिया गया है, पर उसके दिव्य स्वरूप का कभी भी नाश नहीं होता। किस प्रकार साधु–प्रकृति व्यक्ति में है, वैसे ही यह एक पतित व्यक्ति में भी है। इस देव–स्वभाव का आह्वान करना होगा, और वह अपने स्वयं को ही प्रकट कर देगा। हम उसे पुकारेंगे और वह जग जाएगा। पहले लोग जानते थे कि चकमक पत्थर की सूखी लकड़ी में आग रहती है, पर उस आग को बाहर निकालने के लिए घर्शण आवश्यक था। इसी प्रकार मुक्तभाव और पवित्रता –रूपी अग्नि प्रत्येक आत्मा का स्वभाव है, आत्मा का गुण नहीं, क्योंकि गुण तो उपार्जित किया जा सकता है, इसलिए वह नश्ट भी हो सकता है। आत्मा मुक्त भाव से अभिन्न है, सत् या अस्तित्व और ज्ञान से अभिन्न है। यह सत्–चित्–आनन्द आत्मा का स्वभाव है, आत्मा का जन्मसिद्ध अधिकार है, और यह सब व्यक्त भाव जो हम देख रहे हैं, उसी का धुंधली और उज्ज्वल अभिव्यक्तियाँ है। यहाँ तक कि, मृत्यु भी उस प्रकृत सत्ता की एक अभिव्यक्ति है। जन्म–मृत्यु, क्षय–वृद्धि उन्नति–अवनति, सब–कुछ उस एक अखण्ड सत्ता की ही विचित्र अभिव्यक्तियाँ हैं। हमारा साधारण ज्ञान भी, यह चाहे विद्या अथवा अविद्या किसी भी रूप से प्रकाशित क्यों न हो, उसी चित् का, उसी ज्ञान स्वरूप का प्रकाश है, विभिन्नता प्रकारगत नहीं है, अपितु परिमाणगत है। नीचे धरती पर रेंगने वाला क्षुद्र कीड़ा और स्वर्ग का श्रेश्ठतम देवता इन दोनों के ज्ञान का भेद प्रकारगत नहीं परिणाणगत है। इसी कारण वेदान्ती मनीशी निर्भय होकर कहते हैं कि हमारे जीवन के सारे सुख यहाँ तक कि, नितान्त गर्हित आनन्द भी उसी आनन्द स्वरूप आत्मा का प्रकाश है।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि हम बुद्ध नहीं वरन् नित्यमुक्त हैं। यही नहीं, बल्कि अपने को बुद्ध सोचना भी अनिश्टकर है; वह तो भ्रम है– आत्म–सम्मोहन है। तुमने कहा कि मैं बुद्ध हूँ, दुर्बल हूँ, असहाय हूँ, तुम्हारा दुर्भाग्य आरम्भ हो गया, तुमने अपने पैरों में एक और बेड़ी डाल ली। इसलिए ऐसी बात कभी न कहना और न इस प्रकार कभी सोचना ही। मैंने एक व्यक्ति की बात सुनी है। वे वन में रहते थे और उनके अधरों पर दिन–रात 'शिवोऽहं, शिवोऽहं' की वाणी रहा करती थी। एक दिन एक बाघ ने उन पर आक्रमण किया और उन्हें पकड़कर ले चला। नदी के दूसरे तट पर कुछ लोग यह दृश्य देख रहे थे और उनके मुख से लगातार निकलती हुई 'शिवोऽहं, शिवोऽहं' की ध्वनि सुन रहे थे। जब तक उनमें बोलने की भाक्ति रही, बाघ के मुँह में पड़कर भी वे 'शिवोऽहं, शिवोऽहं' कहते रहे। इसी प्रकार और भी अनेक व्यक्तियों की बात सुनी गयी हैं। कुछ ऐसे व्यक्ति हो गए हैं, जिनके भात्रुओं ने उनके टुकड़े –टुकड़े कर डाले, पर वे उन्हें आशीर्वाद ही देते रहे। सोऽहं, सोऽहं–मैं ही वह हूँ, और तुम भी वही हो। मैं पूर्ण स्वरूप हूँ, और मेरे भात्रु भी पूर्ण स्वरूप हैं। तुम भी वही हो, और मैं भी वही हूँ। यही वीर की अवस्था है।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि वेदान्त कहता है कि केवल यही स्तवन हमारी प्रार्थना हो सकता है। उस अन्तिम लक्ष्य पर पहुँचने का यही एकमात्र उपाय है– अपने से और सबसे यही कहना कि हम ब्रह्म स्वरूप हैं। हम ज्यों–ज्यों इसकी आवृत्ति करते हैं, त्यों–त्यों हममें बल आता जाता है। 'शिवोऽहं, शिवोऽहं' रूपी यह

अभयवाणी क्रमशः अधिकाधिक गम्भीर हो हमारे हृदय में, हमारे सभी भावों में भिदती जाती है और अन्त में हमारी नस–नस में, हमारे भारीर के प्रत्येक भाग में समा जाती है। ज्ञानसूर्य की किरणें जितनी उज्ज्वल होने लगती है, मोह उतना ही दूर भागता जाता है, अज्ञानराशि ध्वंस होती जाती है, और अन्त में एक समय आता है, जब सारा अज्ञान बिलकुल लुप्त हो जाता है और केवल ज्ञानसूर्य ही अवशिश्ट रह जाता है।

स्वामी जी ने बताया है कि सबसे बड़ा भ्रम है, स्वयं को दुर्बल समझना। मैं यह नहीं कर सकता आदि–आदि विवेकानन्द का विचार है कि जब हम इस प्रकार सोचते हों तभी बन्धन–शृंखला में एक कड़ी और जोड़ देते हैं। उनके मतानुसार जो स्वयं को दुर्बल अपवित्र समझता है, वह भ्रांत है। वेदान्त इस सम्मोहित जीवन, का आदर्श के साथ समझौता कराने की कोई चेष्टा नहीं करता, वरन् उसे परित्याग कर, वर्तमान सत्य जीवन स्वीकारने को कहता है। विवेकानन्द समझाते हैं कि बात केवल अधिकाधिक अभिव्यक्ति की है। ''आवरण हट जाता है और आत्मा की स्वाभाविक पवित्रता स्वयं प्रकाशित होने लगती है। यह अनंत पवित्रता, मुक्त स्वभाव, प्रेम और ऐश्वर्य पहले से ही हममें विद्यमान है।

अद्वैत वेदान्त के आधार पर सर्वधर्म समन्वय

यह एक सर्वजनविदित तथ्य है कि यद्यपि धर्म ने ही मानव जीवन में सर्वापेक्षा अधिक शान्ति और प्रेम का विस्तार किया है, परन्तु साथ ही उस धर्म ने ही सर्वपेक्षा भीषण घृणा और विद्वेष की भी सृष्टि की है। इसलिए स्वतः ही यह प्रश्न मन में आता है कि क्या पृथ्वी के विभिन्न धर्म सचमुच परस्पर विरोधी हैं?

विविध धर्मों के मन्दिर, भाषा, कर्मकाण्ड, शास्त्र आदि की विविधता के अन्तराल में प्रत्येक धर्म के भीतर की जो आत्मा है स्वामीजी की दृष्टि में वे परस्पर विरोधी नहीं हैं, किन्तु परस्पर पूरक हैं। प्रत्येक धर्म मानो एक महान् सार्वभौम सत्य के एक–एक अंश को मूर्तिमंत करने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा देता है। हर सम्प्रदाय के पीछे एक उद्देश्य है, एक महान् भाव निहित है, जो कि जगत् के कल्याण के लिए आवश्यक है और इस कारण उसका पोषण करना उचित है।

स्वामीजी के अनुसार, मनुष्य जब तक चिन्तन करेगा तब तक सम्प्रदाय भी रहेंगे। वैषम्य ही जीवन का चिह्न है और वह अवश्य रहेगा ही। धर्म के विषय में जितनी बार मनुष्य जाति को एक प्रकार की विचारधारा में ले जाने की कोशिश की गयी है, उतनी ही बार वह विफल हुई है और आगे भी विफल होगी। यदि हम सब एक ही प्रकार के विचारों पर विचार करें, तो हमारे लिए विचार करने का कोई विषय ही नहीं रहेगा। दो या इससे अधिक शक्तियों में संघर्ष होने से ही गति सम्भव है। उसी प्रकार चिन्तन के घात–प्रतिघात से ही, चिन्तन के वैचित्र्य से ही नये विचारों का उद्भव होता है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार, संसार में विभिन्न प्रकार के मन तथा संस्कार सम्पन्न लोगों का सम्पूर्ण सामान्यीकरण असम्भव है। परन्तु व्यावहारिक प्रयोजन के लिए उन्हें चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

- कर्मठ व्यक्ति– जो कर्मेच्छुक हैं तथा जिनके नाड़ीतन्त्र और मांसपेशियों में विपुल शक्ति है। उनका उद्देश्य है काम करना, सत्कार्य करना जैसे : अस्पताल तैयार करना, रास्ता बनाना, योजना स्थिर करके संघबद्ध होना आदि।
- भावप्रवण व्यक्ति– जो उदार को और सुन्दर को सर्वान्तःकरण से प्रेम करते हैं। वे सुन्दर की चिन्ता करते हैं, प्रकृति के मनोरम दृश्यों का उपभोग करने के लिए तथा प्रेम करते हैं, प्रेममय भगवान की पूजा करने के लिए।
- रहस्यवादी– जो व्यक्ति अपने मन का विश्लेषण करना चाहते हैं और मनुष्य के मन की क्रियाओं को जानना चाहते हैं। मन में कौन–कौन सी शक्तियाँ काम कर रही हैं और उन शक्तियों को पहचानने के या उनको परिचालित करने के अथवा उनको वशीभूत करने के क्या उपाय हैं– यही सब जानने को वे उत्सुक हैं।

- दार्शनिक– प्रत्येक विषयकी जो परीक्षा लेना चाहते हैं और अपनी बुद्धि के द्वारा मानवीय दर्शन से जहाँ तक जाना सम्भव है, उसके भी आगे जाने की इच्छा रखते हैं।

यदि किसी धर्म को अधिकतर लोगों के लिए उपयोगी होना है, तो उसमें इन सब भिन्न वर्गों के लोगों के लिए उपयुक्त सामग्री जुटाने की क्षमता होनी चाहिए, और जहाँ इस क्षमता का अभाव है, वहाँ सभी सम्प्रदाय एकदेशीय हो जाते हैं, और यही धर्म की वर्तमान अवस्था है। भारतीय परम्परा में दर्शन का लक्ष्य केवल तत्वविवेचन ही नहीं, अपितु तत्त्व का साक्षात्कार भी है और धर्म, दर्शन का व्यावहारिक पक्ष है, दर्शन–सैद्धान्तिक पक्ष। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार, 'सिद्धान्त कितना भी अच्छा हो, अगर कार्यरूप में उसे परिणित नहीं किया जा सकता है, तो बौद्धिक व्यायाम के अतिरिक्त उसका और कोई मूल्य नहीं रहता। अतः धर्म के रूप में वेदान्त को भी अवश्य ही नितानत व्यावहारिक होना चाहिए। हमें अपने जीवन की सभी अवस्थाओं में उसे कार्यरूप में परिणित कर सकना चाहिए। आध्यात्मिक और व्यावहारिक जीवन के बीच जो एक काल्पनिक भेद है, उसे भी मिट जाना चाहिए, क्योंकि वेदानत एक अखण्ड वस्तु के सम्बन्ध में उपदेश देता है–वेदान्त कहता है कि एक ही प्राण सर्वत्र विद्यमान हैं।

स्वामीजी की इन बातों से जो स्पष्ट होता है वह है–

- प्रयोग के बिना सिद्धान्त अधूरा है।
- वेदान्त हमारे जीवन के प्रत्येक हिस्से से जुड़ा है।

वेदान्त एकत्व की शिक्षा देता है। फलतः आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक जीवन के बीच का भेद युक्तियुक्त नहीं है।

स्वामी जी हमें ध्यान दिलाना चाहते हैं कि वेदान्त के सत्यसमूह केवल अरण्य में ध्यान द्वारा नहीं, बल्कि प्रबल कर्मव्यस्तता के बीच रहने वाले मनीषियों द्वारा प्रकाशित किये गये हैं। वेदान्त दर्शन का सर्वोत्तम भाष्यस्वरूप गीता का उपदेश स्थल है। संग्राम क्षेत्र और तीव्र कर्मव्यस्तता के बीच अनन्त शान्तभाव–गीता का यही उपदेश है। इस अवस्था को प्राप्त करना ही वेदान्त का लक्ष्य है।

समाज में धर्म का स्थान एवं उद्देश्य

भारतीय समाज में धर्म एक ऐसा तत्व है जिस पर सम्पूर्ण भारतीय समाज का ढाँचा आधारित है। इसका कारण यह है कि भारत में धर्म के अन्तर्गत अनेक उच्च आदर्शों और मूल्यों का समावेश है। भारत में धर्म मानव–समाज का ऐसा सर्वव्यापी शाश्वत तत्व है, जिससे समझे बिना इस समाज की संरचना एवं स्वरूप को समझना असम्भव है। प्राचीनकाल से सामाजिक नियन्त्रण के क्षेत्र में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रत्येक मानव–संस्कृति में धर्म का अपना विशेष स्थान रहा है, जिसे कोई अन्य संस्था आज तक स्थानापन्न नहीं कर सकी है।

प्रश्न उठता है कि धर्म का जन्म क्यों और किस प्रकार हुआ ? आदिमकाल से मनुष्य अनेक प्राकृतिक विपदाओं के बीच अपने को पाता था जैसे भूकम्प बाढ़, अकाल, ज्वालामुखी का विस्फोट आदि। ऐसी स्थिति से मनुष्य के मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक था कि इन प्राकृतिक घटनाओं का संचालन कौन करता है ? पानी क्यों गिरता है ? बिजली क्यों कौंधती है ? इतना ही नहीं इन प्राकृतिक विपदाओं से बचने के लिए वह अनेक प्रयास भी किया करता था, परन्तु मनुष्य सदैव अपने को असहाय पाता था ऐसी स्थिति में मनुष्य के मस्तिष्क में शनैः शनैः यह धारणा विकसित हो गयी कि अवश्य ही कोई–न–कोई ऐसी अलौकिक शक्ति है जो इन प्राकृतिक घटनाओं का संचालन करती है। चूँकि कालान्तर में वह इस अदृश्य अद्भुत शक्ति की पूजा–आराधना करने लगा, उससे सुरक्षा व सहायता की अपेक्षा करने लगा, इस प्रकार समाज में धर्म का जन्म एवं स्थापना हुई।

भारतीय संस्कृति में धर्म का अर्थ अँग्रेजी शब्द 'रिलीजन' के अर्थ से अलग है। शाब्दिक दृष्टिकोण से धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है और इसका अर्थ वह है जो किसी वस्तु को धारण करे या उस वस्तु का अस्तित्व बनाये रखे। महाभारत में स्पष्ट उल्लेख है – 'धारणाद्वर्ममित्याहु धर्मोधारयति प्रजाः।'' अर्थात् धारणा करने वाले को धर्म कहते हैं, धर्म प्रजा को धारण करता है। मनु स्मृति में कहा गया है कि ''धृतिः क्षमाः दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः त्रिविधा सत्यमक्रोधा दशकं धर्म लक्षणम्।''

## निष्कर्ष

विवेकानन्द ऐसे समकालीन भारतीय दार्शनिक थे जिन्होंने वेदान्त–दर्शन की समयानुकूल व्यावहारिक व्याख्या कर उसे राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन धारा से जोड़ा। स्वामी विवेकानन्द ने अद्वैत वेदान्त को यथार्थ और समयानुकूल रूप में प्रस्तुत किया। स्वामी विवेकानन्द ने वेदान्त की जो परम्परागत शास्त्रीय व्याख्यायेंचल रही थीं उनसे भिन्न एक नवीन व्याख्या प्रस्तुत कर उसे व्यवहार के धरातल पर उतार जन–जीवन योग्य बनाया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि इन दार्शनिक चर्चाओं ने, इस न्याय के कूट विचारों ने किसी समयभले ही देश का हित किया हो पर आज इनकी आवश्यकता नहीं है। जो दर्शन केवल बुद्धिवादियों की चहारदिवारियों तक सीमित है उसका बुद्धि विकास के अतिरिक्त और कोई मूल्य नहीं है। इसकी सरलतम विधि बताते हुए विवेकानन्द ने कहा कि प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन के प्रत्येक कार्य में पवित्रता, निश्छलता, निष्कपटता, सत्यता, एवं स्वार्थ हीनता के गुण समाहित करना चाहिए। उन्होंने कहा कि वेदान्त केवल सन्यास ग्रहण करके, घर समाज को छोड़कर ईश्वर–प्राप्ति का आदेश नहीं देता, अपितु इस आदर्श को गृहस्थ व समाज के प्रति निष्ठापूर्वक रहकर ही प्राप्त किया जा सकता है।

विवेकानन्द ने वेदांत दर्शन की विस्तृत व्याख्या की है। स्वामी जी ने लिखा है कि वेदांत एक प्रकार का जीवन दर्शन है, क्योंकि कुछ सीमा तक यह, वास्तव में भारत की समस्त दार्शनिक प्रवृत्तियो, आस्तिक व नास्तिक दोनों को समावेशित करता है।यह अनगिनत शाखाओं वाला महान वट वृक्ष के समान हिन्दू धर्म वेदान्त के ही प्रभाव से खड़ा है। चाहे हम जाने, चाहे न जाने, परन्तु हम वेदांत का ही विचार करते हैं, वेदांत ही हमारा जीवन है, वेदांत ही हमारी सांस है, मृत्यु तक हम वेदांत के ही उपासक हैं और प्रत्येक हिन्दू का यही हाल है। वेदांत की दार्शनिक धरोहर को एकमात्र पूर्ण मानते हुए विवेकानन्द ने इसके अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं प्रगतिशील तत्वों को अलग करने के कार्य में स्वयं को लगाया ताकि इसके आधार पर एक नवीन वेदान्त बनाया जा सके।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था यह मेरे जीवन का प्रयास है एवं यही मेरे जीवन का उद्देश्य है कि वेदांत के मत परस्पर विरोधी नहीं हैं, कि वे सब एक दूसरे के आवश्यक परिणाम हैं, सभी एक दूसरे को पूर्णता प्रदान करते हैं, एवं जैसे भी ये हैं, एक–दूसरे को जानने की सीढ़ियाँ हैं।

## संदर्भ ग्रन्थ सूची


1. Lecturers from Colombo to Almora, Ramkrishna Mission Institute of Culture, Gol Park, Kolkata, 1956
2. Published by Advait Ashram, Kolkata
3. Raja Yoga (1988)
4. Bhakti Yoga (1981)
5. Karma Yoga (1981)
6. Jnana Yoga (1998)
7. Sister, Nivedita : The Master as I saw Him, Udbodhan, Kolkata, 1959
8. Sister, Nivedita : The Web of Indian Life, Udbodhan, Kolkata, 1904
9. Sister, Nivedita : The Last of Pous, Udbodhan, Kolkata
10. Sister, Nivedita : Cradle tales on Hinduism, Udbodhan, Kolkata, 1907
11. Sister, Nivedita : An Indian Study of Love and Death, Udbodhan, Kolkata, 1908
12. Sister, Nivedita : Kali the Mother, Kolkata
13. Sister, Nivedita : Studies from an Eastern Home, Udbodhan, Kolkata
14. Vednata Philosophy AN Address Before the Graduate Philosophical Society, Published by Vedanta Society, New York, 1901.
15. Vivekanand, Swami : Inspired talks, Ramkrishna Mission, Institute of culture, Gol Park, Kolkata, 1960
16. Vivekanand, Swami : Para Bhakti or Supreme Devotion, Advait, Kolkata, 1960
17. Muller, Max : Biographical Essays, Ramkrishna Mission, Kolkata, 1960

**Articles**


18. Is the Soul Immortal –New York Morning Advertiser (1895)
19. Knowledge its Source and Acquirement – Udbodhan Feb. 12, 1899
20. Memories of European Travel (Part II) –Udbodhan 1900
21. Modern India – Udbodhan Mar. 1899
22. On Dr. Paul Deussen – Brahmavadin 1896
23. On Professor Max Muller - Brahmavadin 1896
24. Prabuddha Bharata – Complete Edition, March 1897
25. Avinashilingam, T.S. : Make me a man, message of Swami Vivekananda, Sri Ramakrishna Mission Vidyalaya, Patna, 1966
26. आर्य संध्या, भारतीय चिन्तन में स्वराज', जैन एँड जैन, जयपुर, 1999
27. भुस्कुटे, गो.कृ., 'हिन्दी धर्म : मानव धर्म', प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1982
28. बुद्ध प्रकाश, 'भारतीय धर्म और संस्कृति', मीनाक्षी प्रेस, मेरठ
29. बर्क, मेरी लुई, 'शिकागो की विश्व धर्म महासभा', रामकृष्ण मठ, नागपुर, 1994
30. चतुर्वेदी अरुण व मीणा सोहनलाल, 'राजनीति के विविध आयाम', प्रिंट वेल, जयपुर, 1996
31. देसाई, ए.आर., 'भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि', मैकमिलन, नई दिल्ली, 1996
32. दुबे, श्यामा, 'मानव और संस्कृति', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1960
33. दत्ता, बी.एन., 'स्वामी विवेकानंद', पैट्रियॉट प्रोफेट, नवभारत पब्लिशर्स, कलकत्ता, 1954
34. गाबा, ओ.पी., 'राजनीतिक विचार कोश', नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1995
35. गांधी, मो.क., 'हिन्दू धर्म, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1980
36. गीता शंकर भाष्य, 'हिन्दी अनुवाद', गीता प्रेस, गोरखपुर, 1988
37. स्वामी विवेकानंद, 'मेरे भारत जागो', रामकृष्ण मठ, बेल्लुड़, प. बंगाल, 1993
38. स्वामी विवेकानंद, 'शिकागो भाषण माला', रामकृष्ण मठ, बेल्लुड़, 1993
39. स्वामी विवेकानंद, 'पत्रावली', खंड–1 व 2, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 1996
40. स्वामी विवेकानंद, 'माया एँड इल्यूजन', दि कम्पलीट वर्क्स ऑफ विवेकानंद, मायावती मेमोरियल संस्करण, 1947
41. स्वामी विवेकानंद, 'धर्म रहस्य', रामकृष्ण मठ, नागपुर, 1994
42. स्वामी विवेकानंद, 'धर्म तत्व', रामकृष्ण मठ, नागपुर, 1990
43. स्वामी विवेकानंद, 'व्यवहारिक जीवन में वेदांत', रामकृष्ण मठ, नागपुर, 1994
44. स्वामी विवेकानंद, 'प्राच्य और पाश्चात्य', रामकृष्ण मठ, नागपुर, 1992
45. स्वामी विवेकानंद, 'हे भारत्! उठो, जागो!', रामकृष्ण मठ, नागपुर, 1997
46. स्वामी विवेकानंद, 'मेरा जीवन, मेरा ध्येय', रामकृष्ण मठ, नागपुर, 1991
47. स्वामी विवेकानंद, 'वर्तमान भारत', रामकृष्ण मठ, नागपुर, 1991
48. स्वामी विवेकानंद, 'भारत का भविष्य', रामकृष्ण मठ, नागपुर, 1991
49. स्वामी विवेकानंद, 'शिक्षा', रामकृष्ण मठ, नागपुर, 1985
50. स्वामी विवेकानंद, 'भारतीय नारी', रामकृष्ण मठ, नागपुर, 1997 स्वामी विवेकानंद, 'फ्रॉम कोलम्बो टू अल्मोड़ा', सेवेन्टी लेक्चर्स, अद्वैत आश्रम, नागपुर, 1997


❖◆❖